

रमेश कुमार सोनी

रायपुर, छत्तीसगढ़

शब्दों के घाव.

पुस्तकें डरती हैं—
आग और दीमक जैसी सोच से
ऐसे ही डरती हैं औरतें—
घरेलू हिंसा, दहेज़ की आग और
नफरतों की तेज़ाब से;

बच्चे भी ऐसे ही डरते हैं—
गणित के सवालों से,
अंग्रेजी के हिज्जों से।
डर और अँधेरा तब तक कायम है
जब तक इसमें
घुसने का हौसला नहीं आता,
इन सबके लिए जरुरी है—

माँ जैसी शिक्षक की सीख और
कलेजा
यहीं से आते थे शब्द
दौड़ते—हाँफते हुए हम तक
हमने कहाँ देखा,
कहाँ सुना, कहाँ पढ़ा इसे।

इन सबमें रची—बसी है
शब्दों की जादूगरी जो
बसा लेते हैं अपने आस—पास
डरावने जंगल, घूरती आँखें और
कोहरों से भरी दुनिया;

शब्द भाषा बुनते हैं
तब पैदा होता है— साहस, विश्वास
और सुरक्षा,
इन शब्दों की सुगंध को परखने
जौहरी जैसा बच्चा चाहिए और

परिंदे जैसा निडर होने के लिए
घोंसले की निगेहबानी होनी
चाहिए
शब्द तो शब्द हैं
जिसने जैसा साध लिया
किसी ने घाव दे दिए तो किसी ने
मरहम...।

चीखते शब्द

लदी हुई ज़िम्मेदारी भिन्न कहाँ हैं
आदमी, बैल और स्त्रियों में
बोझ की जाति भर अलग है
कोई सुस्ताता कहाँ है।

सभी के काँधे लहूलुहान हैं
दर्द को पाल रखा है तोते सा
उफ़्फ़ की मनाही है।

हर बार शाबाशी का तमगा देकर
बढ़ा दिया जाता है बोझ और थोड़ा सा
पसीना भी थककर सो गया
टहल रहा है मालिक।

कोल्हू कभी रुकता नहीं
गेंदा को गुलाब उगाने की मनाही है
पनघट में स्त्रियाँ
गौशाला में बैल और
भीड़ के लोग हड़ताल पर हैं
माँग और शर्तों की तख्तियाँ चीख़ रही हैं।